प्रवचन–4, गाथा–15

चौदहवीं (गाथा में) सम्यग्दर्शन का अधिकार था। यह सम्यग्ज्ञान का (अधिकार) है। दोनों एक ही बात है। (चौदहवीं में) दर्शन का था, इसमें (पन्द्रहवीं में) ज्ञान का (है)। बात इसमें थोड़ी सूक्ष्म आयेगी।

टीका : जो यह अबद्धस्पृष्ट,.... आत्मा है, वह राग और कर्म के परमाणुओं से बँधा हुआ नहीं – ऐसा वह आत्मा अन्दर मुक्तस्वरूप है। यह एक पहला बोल – अबद्धस्पृष्ट। **अनन्य...** (अर्थात्) अन्य–अन्य गति इसमें नहीं। नारकी और मनुष्य और ऐसी गति इसमें नहीं, अनन्य है, यह तो आनन्दरूप अनन्यस्वरूप है। अन्य–अन्य स्वरूप नहीं। अन्य–अन्य स्वरूप है। भाषा जरा...**नियत...** (अर्थात्) निश्चयस्वरूप है। एकरूप त्रिकाल ज्ञायक, पर्याय के भेद से रहित अन्दर निश्चयस्वरूप (है)। नियत अर्थात् निश्चयस्वरूप है। **अविशेष...** (अर्थात्) वह गुणभेद से रहित अभेद है। यह सूक्ष्म बात है। उसमें गुणभेद भी नहीं। विशेषता नहीं, सामान्यपना है। एकरूप त्रिकाल, वह सामान्य (है), उसको यहाँ अविशेष कहते हैं। और **असंयुक्त...** मोहसहित–राग आदि है, उससे रहित है। मोह की संयुक्तता से रहित है। इसका स्वरूप ही ऐसा है। ऐसा **असंयुक्त...ऐसे पाँच भावस्वरूप...** शब्द 'पाँच भाव' है, (किन्तु) है एक समय में साथ। क्या कहा? यह पाँच भाव कहे परन्तु पाँच भाव क्रम–क्रम से हैं – ऐसा नहीं; एक ही समय में पाँच भावस्वरूप है। आहा...हा...! चन्दुभाई! यह पाँच भावस्वरूप की व्याख्या फिर से (लेने का) कहा था न? कुछ नया आना चाहिए न! आहा...हा...!

भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप द्रव्य है। अन्य–अन्य जिसमें दशाएँ नहीं, (ऐसा) वह तो अनन्यस्वरूप ही है। निश्चयस्वरूप है और विशेषता जिसमें नहीं, गुण का भेद (नहीं) (अर्थात्) गुणी आत्मा और ज्ञानगुण – ऐसा विशेष भी जिसमें नहीं (– ऐसा) यह सामान्य है और असंयुक्त (अर्थात्) राग और द्वेष आदि दुःख की दशा के संयुक्तता से–सहित से रहित है। दुःख की दशा के सहित से रहित है। आ...हा...हा...! ऐसे पाँच भावों स्वरूप – शब्द 'पाँच भाव' है परन्तु पाँच भाव एक समय में है। क्या कहा? अबद्धस्पृष्ट वह एक

समय में, दूसरे समय में अनन्य और तीसरे में नियत और चौथे में अविशेष और पाँचवें में असंयुक्त – ऐसा नहीं। यह तो समझाया है, इसलिए पाँच प्रकार समझाये परन्तु एक समय में पाँचों भावस्वरूप है। समझ में आया? अभी तो सम्यग्ज्ञान–चौथे गुणस्थान में सम्यग्ज्ञान की व्याख्या है। पाँचवें और छठवें (गुणस्थान के) चारित्र की बात तो कहाँ आगे रह गयी!!

आत्मा पाँच भावोंस्वरूप एकरूप (है)। पाँच भावोंस्वरूप एकरूप... **आत्मा की अनुभूति...** ऐसे आत्मा का अन्दर अनुभव। आहा...हा...! जैसा आत्मा सामान्य कहा, अबद्धस्पृष्ट अर्थात् मुक्त, सामान्य, उसका लक्ष्य करने पर जो अनुभव हो, आनन्द का स्वाद आये और भावश्रुतज्ञान प्रगट हो, उसको यहाँ 'अनुभूति' कहा गया है। समझ में आया? भाषा तो सरल है (किन्तु) भाव जरा कठिन है। ऐसा गाँव में कहाँ से आया? आ...हा...हा...! आत्मा की अनुभूति है।

इन पाँच भावस्वरूप भगवान एकरूप है। मुक्त कहो तो वह; अनन्य कहो तो वह; नियत कहो तो वह; विशेषरहित सामान्य कहो तो वह; मोह की संयुक्तता रहित कहो तो वह। चन्दुभाई ने कहा कि यह फिर से लेना। कल ले लिया गया है। यह हिन्दी में लिया गया था।

आहा...हा...! ऐसे आत्मा की अनुभूति, अनन्त काल में एक समय भी जिसने ऐसे आत्मा की अनुभूति की नहीं। परिभ्रमण में इसको 'आत्मा एकरूप है' – ऐसा ज्ञान ही कभी भी नहीं किया। बाकी साधु भी अनन्त बार हुआ, बाहर (का) त्यागी भी अनन्त बार हुआ परन्तु यह पाँच भावस्वरूप एकरूप, उसका अनुभव, अभेद का अनुभव, पर्याय बिना का सामान्य जो त्रिकाल है – ऐसे सामान्य का अनुभव (किसी दिन किया नहीं)। अनुभव पर्याय है, किन्तु अनुभव सामान्य का है। सामान्य का कहने में आता है, वरना सामान्य ध्रुव है, उसका अनुभव होता नहीं किन्तु सामान्य पर दृष्टि होने से सामान्य का अनुभव है – ऐसा कहा जाता है। आ...हा...हा...! है?

वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है, ऐसा आत्मा... जैनशासन कोई सम्प्रदाय नहीं, कोई पक्ष नहीं, पंथ नहीं; वस्तु है। वस्तु–आत्मा वीतरागमूर्ति है। यह पाँच भावस्वरूप एकरूप का जो अनुभव, वह तो वस्तु हुई; कोई सम्प्रदाय नहीं। वह वस्तु है, उसका अन्दर अनुभव होना, वह जैनशासन की अनुभूति है। कहो, समझ में आया? आ...हा...हा...! ऐसी सूक्ष्म बात! अब थोड़ी सूक्ष्म आयेगी! यह पाँच भावस्वरूप एकरूप

(को) अन्तर्मुख (होकर) देखने पर उसे पाँच भाव का भेद भी जहाँ नहीं – ऐसा एकरूप, उसकी अनुभूति – उसका अनुभव, वह जैनशासन का अनुभव है, वह जैनशासन है। पर्याय, हों! अनुभूति की पर्याय को जैनशासन कहा है।

मुमुक्षु : इसमें तो सम्प्रदाय के भेद दूर हो जाए – ऐसी बात लिखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्प्रदाय की बात यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो यह पाँच भाव के भेद भी नहीं। आहा...हा...! यहाँ तो तत्त्व की बात है, प्रभु! आ...हा...हा...! यह सब गाथायें तो तुमने ली है न! लक्ष्मीचन्द और सब इकट्ठे होकर, हमारे झवेरचन्दभाई वांचनकार तो मुख्य ये थे न? पहले झवेरचन्द थे, फिर ये वेलजीभाई हुए। यह गाथा तुमने (प्रवचन के लिये) लिखी है, झवेरचन्दभाई!

मुमुक्षु : गाथा अच्छी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाथा अच्छी है। आहा...हा...!

(यहाँ) कहते हैं, प्रभु! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव जिनेश्वरदेव, जिनके इन्द्र तलवे चाँटें! इन्द्र सुनते (समय) इनकी सभा में पिल्ला – जैसे बच्चा हो वैसे बैठे! ऐसे... बैठे! और सुने! प्रभु बिराजते हैं–महाविदेह में प्रभु विराजते हैं, उनकी यह वाणी है। आहा...हा...! अन्दर सभी भगवान है। इस भगवान का अनुभव अबद्धस्पृष्टरूप हो तो भगवान है। बद्धस्पृष्टरूप देखे तो वह भगवान का स्वरूप नहीं। आ...हा...हा...!

यह पाँच (भावस्वरूप आत्मा) का अनुभव, वह निश्चय से समस्त / पूरे जैनशासन की अनुभूति है। पूरा जैनदर्शन, वीतराग मार्ग, चार अनुयोगों का सार वीतरागता, वह पूरा–समस्त जैनशासन, (वह) इस आत्मा की अनुभूति, वह समस्त जैनशासन है, अर्थात् कि वीतरागता है। जैनशासन अर्थात् वीतरागता है। आहा...हा...! यह चौथे गुणस्थान की बात चलती है, हों! वहाँ जो ज्ञान हुआ है, वह वीतरागी ज्ञान है। भाषा सरल है। धनकुमार सेठजी! यह तो थोड़ा–थोड़ा समझ में आये ऐसा (है)। भाषा (सरल है।) वहाँ से आये है न?

मुमुक्षु : समझ में आ रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ रहा (है)। आ रहा (है)! धीरे.... धीरे से.... लोगों को

उत्साह है न, प्रेम है। सुनो प्रभु! यह बात तो अन्दर की है, प्रभु! आ...हा...हा...!

निश्चय से समस्त जैनशासन (कहा, तो) समस्त में क्या आया? चारों ही अनुयोगों का सार यह है। चारों ही अनुयोगों में कथन यह है। अबद्धस्पृष्ट ऐसा भगवान आत्मा – यह नास्ति से बात की है। अस्ति से कहें तो मुक्तस्वरूप प्रभु (है)। अबद्ध (अर्थात्) 'बद्ध नहीं' – ऐसी नास्ति से बात की। अस्ति से कहें तो अन्दर मुक्तस्वरूप भगवान है। द्रव्य जो है, वह मुक्तस्वरूप है, सकल निरावरण है – त्रिकाल निरावरण है। आहा...हा...हा...! ऐसा जो द्रव्य अर्थात् वस्तु। अभी एक समय की पर्याय की बात नहीं। इस वस्तु का अनुभव होना, वह पर्याय (है), अनुभव, वह पर्याय (है और) वह समस्त जैनशासन की अनुभूति है। सामान्य वस्तु, वह जैनशासन नहीं; उसका अनुभव, वह जैनशासन है क्योंकि वीतरागता, वह जैनशासन है। आहा...हा...हा...! समझ में आये ऐसा है बापू! हों, भगवान! बहनों–लड़कियों को भी समझ में आये ऐसा है। बहनों–बेटियों, माताओं! यह तो भगवान आत्मा की बातें हैं, बापा! आहा...हा...! भगवानजी भाई! सभी भगवानस्वरूप है। बहिन–बेटी हो, माता हो, बड़ा हो या लड़का हो या बालक हो (सभी भगवान है)। आहा...हा...!

प्रभु ऐसा कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन न! आहा...हा...! तू अन्दर जो मुक्तस्वरूप हो! आहा...हा...! सामान्यस्वरूप हो! सामान्य अर्थात् भेदरहित; नियत (अर्थात्) निश्चयस्वरूप हो; गुणभेद से रहित जो तेरा स्वभाव है; मोह की, राग की संयुक्तता से रहित तेरा स्वरूप है, उसकी अनुभूति वह समस्त जैनशासन है। पूरे जैनदर्शन का सार (यह है) और अनुभूति, वह जैनशासन है। अब इसमें सम्प्रदाय की कहाँ बात रही? जेठालालभाई! ऐसी बात है, भगवान! आहा...हा...! पन्द्रहवीं गाथा ऐसी है। अलौकिक बात है। आहा...!

समस्त अनुभूति क्योंकि.... अब कारण देते हैं कि **श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है....** क्योंकि वह श्रुतज्ञान हुआ, क्या (कहा)? आत्मा त्रिकाल मुक्तस्वरूप है; नियत–निश्चय है; मोह के संयुक्त से रहित है – ऐसा जो अनुभव, वह श्रुतज्ञान है। वह अनुभव, श्रुतज्ञान है। (चौदहवीं गाथा में) सम्यग्दर्शन कहा था, यहाँ वह श्रुतज्ञान है (– ऐसा कहते हैं)। धीरे से समझ में आये ऐसा है।

करने योग्य तो यह है बापू! देह छूट जायेगी और चला जायेगा; (बाद में) कहाँ

जायेगा? बापू! यह जो नहीं समझे, सम्यग्ज्ञान का डोरा जो नहीं पिरोये (तो) धागा बिना की सुई खो जायेगी। सुई में सूत का डोरा नहीं पिरोया होगा तो वह खो जायेगी। वैसे (ही) सम्यग्ज्ञान बिना जो आत्मा होगा (तो) प्रभु! चौरासी में खो जायेगा। कहाँ अवतार लेगा इसका मेल नहीं रहे। परन्तु यदि सम्यग्ज्ञानरूपी डोरा पिरोया होगा, यह ऐसा स्वरूप है – ऐसा यथार्थ ज्ञान का डोरा (पिरोया) होगा, तो उसको भटकना रहेगा नहीं; उसकी एक–दो भव में मुक्ति हो जायेगी। आहा...हा...!

कयों कि श्रुतज्ञान लिया, देखा इसमें? वह जैनशासन की अनुभूति श्रुतज्ञान लिया। पण्डितजी! सम्यग्दर्शन की व्याख्या चौदहवीं (गाथा में) कही। यह जैनशासन का अनुभव, वह श्रुतज्ञान है – भावश्रुतज्ञान है। द्रव्यश्रुत की वाणी, शब्द को सुना हो और उसका ज्ञान, वह नहीं। शास्त्र वाँचे हों, पढ़े हों, सुने हों, सुनकर अन्दर लक्ष्य हुआ हो, वह भी यहाँ नहीं। यहाँ तो भगवान आत्मा....! आ...हा...हा...! मुक्तस्वरूप विराजता है, प्रभु! ऐसी परमात्मा की पुकार है। यदि मुक्तस्वरूप न हो तो मुक्तस्वरूप होगा कहाँ से? मुक्ति की दशा जो है – मोक्षदशा; मुक्तस्वरूप यदि न हो तो वह मुक्तदशा कहाँ से होगी? क्या ऊपर से आती है? समझ में आया? करमण भाई! यह दूसरी बातें हैं। आहा...हा...! क्या प्रभु बात करते हैं? कहते हैं कि **क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है।** जैनशासन (जिसे) कहा, वह श्रुतज्ञान है और वह श्रुतज्ञान, आत्मा है। भावश्रुतज्ञान (अर्थात्) अन्दर (आत्मा का) वेदन हुआ, वह जैनशासन है, वह श्रुतज्ञान है और वह श्रुतज्ञान, वह आत्मा है। है? लेख है इसके अन्दर! आहा...हा...! समझ करनी चाहिए। जरा सूक्ष्म बात हैं प्रभु!

आ...हा...! तेरे बड़प्पन की बातें करते हुए भगवान भी कहते (हैं कि)

जो स्वरूप झलके जिनवर के ज्ञान में,
जो स्वरूप झलके जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।....

जो अनुभव के वेदन की बात (है), वह वाणी द्वारा कितनी आये। सज्जन की बात शत्रु द्वारा कितनी की जाये? सज्जन की बात शत्रु द्वारा कितनी की जाये? यह वाणी है, वह तो चैतन्य से विरुद्ध है। आ...हा...हा...! वह वाणी द्वारा प्रभु! तेरी चैतन्य की जाति क्या है? (और) कितनी (है वह) कैसे कहा जाये? 'श्रीमद्' कहते हैं...

जो स्वरूप झलके जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।

एक अपेक्षा से, हों! बाकी पूरा कहा है, दूसरी जगह पूरा कहा है।

उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ,

जो स्वरूप (भगवान की) वाणी में भी पूरा नहीं आ सके, क्योंकि वाणी जड़ और प्रभु चैतन्य; इस चैतन्य की बात जड़ द्वारा कहना – वह कितनी आवे? वह सर्वज्ञ भी पूरा नहीं कहे तो अन्य वाणी वह क्या कहे?

अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब।

आत्मा आनन्दस्वरूप, सामान्यस्वरूप, ध्रुवस्वरूप और मुक्तस्वरूप, उसके सन्मुख होने पर जो अनुभव हो, वह श्रुतज्ञान है, वह भावश्रुतज्ञान है, वह अरूपी भावश्रुतज्ञान है; जिसमें द्रव्यश्रुत की भी अपेक्षा है नहीं। आ...हा...हा...! गाथा बहुत ऊँची है। है? वह **श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है।** श्रुतज्ञान की पर्याय को यहाँ आत्मा कहा। क्यों? (क्योंकि) बद्धस्पृष्ट आदि जो राग आदि भाव थे, वे अनात्मा हैं। आ...हा...हा...! अरे...! ज्ञान की अनेक प्रकार की अनियत पर्याय को भी यहाँ अनात्मा कहा है। आहा...हा...! नियतरूप जो त्रिकाल ज्ञायकभाव, अकेला चैतन्य का रसकन्द, ज्ञान का पूर अन्दर पूरा भरा है, उसका अनुभव, वह श्रुतज्ञान है और वह श्रुतज्ञान जैनशासन है और जैनशासन, वह श्रुतज्ञान है; और श्रुतज्ञान, वह आत्मा है। आ...हा...हा...! है? वह **श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है।** ऐसी भाषा (है)। वह स्वयं आत्मा ही है। आ...हा...हा...!

ज्ञानस्वरूप प्रभु का अनुभव करना, वह जैनशासन है – जैनधर्म है, जैनमार्ग है; तीन लोक के साथ मोक्ष का पन्थ वह है। उसे श्रुतज्ञान कहा जाता है और उसे आत्मा कहा जाता है। वह श्रुतज्ञान है, उसे यहाँ आत्मा कहा गया है। आ...हा...हा...! कहो, चन्दुभाई! यह कल का फिर से लिया है।

मुमुक्षु : बहुत अच्छा आया। कल हिन्दी में हुआ था न! हमें समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं होता, समझ में नहीं आता – ऐसा (नहीं) होता।

धनकुमार सेठ कहे कि हमें गुजराती बराबर समझ में नहीं आती (और) तुम कहो कि हिन्दी समझ में नहीं आती। भाषा तो सरल है न, प्रभु! हिन्दी हो या गुजराती! भाषा सरल है। यहाँ कोई बड़ी पण्डिताई और बड़ा व्याकरण और एम.ए. और एल.एल.बी (के) डिग्रियाँ नहीं.... आहा...हा...!

जो स्वरूप... प्रभु! अन्दर तेरा स्वरूप ही भगवान (है)। कहा था न एक (बार)! प्रभु! आपने सब देखा, सर्व ज्ञान (में) आपने देखा, इसमें हमारे आत्मा को आपने ऐसा निर्मल देखा है। समझ में आया? आहा...हा...! पहला शब्द क्या रह गया? भूल गये।

मुमुक्षु : प्रभु तुम जाणग रीति....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ! प्रभु तुम जाणग रीति! भाषा वापस...'प्रभु तुम जाणग रीति', प्रभु को ऐसा कहते हैं।

प्रभु तुम जाणग रीति, सहु जग देखता हो लाल

निज सत्ता से शुद्ध.... प्रभु! हे जिनेश्वर देव, वीतराग! आपके केवलज्ञान में आपने हमें 'निज सत्ता से शुद्ध' हमारी सत्ता–अस्तित्व, वह वीतरागरूप है, उसे तुम आत्मा देखते हो। समझ में आया? आ...हा...हा...! जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ! जिनके सौ इन्द्र तलवे चाँटे और पिल्ले के बच्चे जैसे जिनको सुनने बैठे। आ...हा...हा...! उन प्रभु को कहते हैं, नाथ! *'प्रभु तुम जाणग रीति',* हे नाथ! तुम्हारे ज्ञान की जानने की पद्धति 'सहु जग देखता' तीन काल तीन लोक आप देखते हो, उसमें हमको (कैसा) देखते हो? हमको आप (कैसा) देखते हो? आ...हा...हा...! हमको शरीरवाला और रागवाला आप नहीं देखते। आ...हा...हा...! निज सत्ता से शुद्ध–निज सत्ता-अस्तित्व अबद्धस्पृष्ट है – ऐसे हमारे आत्मा को, हे नाथ! तुम देखते हो! तुम जैसा देखते हो, वैसा हम देखें तो (वह) जैनशासन है। आहा...हा...हा...! भगवानजीभाई!

अन्दर में तुम जो देखते हो, नाथ! हमारे आत्मा का अस्तित्व, आत्मा का सत् अर्थात् सत्व, त्रिकाली वस्तु (शुद्ध सत्तामात्र देखी है)। वस्तु है, उसमें अनन्त गुण बसते हैं, रहते हैं; इसलिए 'वस्तु' कहते हैं। इस मकान का वास्तु लेते हैं न... वास्तु! यह कहीं पीपल के झाड़ में वास्तु लेते (है)? मकान हो वहाँ वास्तु लेते हैं, वैसे यहाँ वस्तु में अनन्त

गुण बसे हुए (हैं) – यह वास्तु है। अनन्त... अनन्त... गुण जिसमें बसे हुए (हैं) ऐसी यह प्रभु वस्तु है। नाथ! हमारी चीज को आप शुद्ध देखते हो। हमारी निज सत्ता, वह तुम्हारी जैसी सत्ता है – ऐसी हमारी सत्ता तुम देखते हो, अब हम हमारी सत्ता तुम देखते हो – ऐसी देखेंगे, तब तुम्हारे साथ शामिल हो जाएँगे। आ...हा...हा...! कहो, लक्ष्मीचन्दभाई!

आ...हा...हा...! यह तो अन्दर की लक्ष्मी की बात है, बापू! आ...हा...हा...! प्रभु! मूर्ख कहो, पागल कहो, चाहे जो कहो! (पूरी) दुनिया को हम जानते हैं परन्तु यह चीज है, वह कोई अलौकिक है। अरे...रे...! इसने अनन्त भव में, अनन्त परिभ्रमण के काल में दुःख भोगे परन्तु यह प्रभु अन्दर मुक्तस्वरूप है और उसका अनुभव, श्रुतज्ञान और जैनधर्म है, यह बात इसने लक्ष्य में ली नहीं प्रभु! आहा...हा...! समझ में आया?

(श्रुतज्ञान स्वयं) आत्मा ही है; इसलिए ज्ञान की अनुभूति वही आत्मा की अनुभूति है। देखो! कहा? कि त्रिकाली का जो ज्ञान हुआ – शुद्ध, अबद्ध, मुक्तस्वरूप का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान ही आत्मा है और उस ज्ञान की अनुभूति, वह आत्मा की अनुभूति है। पर्याय में ज्ञान का अनुभव है, वही आत्मा का अनुभव है। आ...हा...हा...!

अरे... विधि पकड़े तो सही! जाने तो सही! उसकी विधि जाने बिना वह किस प्रकार प्रयत्न करेगा? इसका क्या मार्ग है? आहा...! पहले एक बार उदाहरण नहीं दिया था? हलुवा बनाने जाये तो पहले आटे को घी में सेंके। सीरा कहते हैं, तुम्हारे क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : हलुवा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हलुवा! घी में आटा सेंके, बाद में शक्कर और गुड़ का पानी डाले, तब वह हलुवा बने परन्तु कोई ऐसी समझदार की लड़की निकली (और ऐसा हुआ कि) शक्कर और गुड़ का पानी बाद में डालना पड़ता है न, तो गुड़ के पानी में पहले आटा सेको! बाद में डालो घी! तीनो जाएंगे तेरे! लेई भी नहीं बनेगी!! हलुवा तो नहीं बनेगा परन्तु लेई भी नहीं बनेगी। इसी प्रकार जो यह विधि है, इससे दूसरी तरह करेगा तो तेरा चार गति में परिभ्रमण मिटेगा नहीं। मार्ग यह है। हलुवा बनाने का तरीका–पहले घी में आटे को सेंकना, ऐसा है। ऐसे मोक्ष का मार्ग – पहले आत्मा को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान करना

यह है। भगवानजीभाई ! आहा...हा... !

कहते हैं **वह... ज्ञान की अनुभूति, वही आत्मा की अनुभूति है।** पर्याय, हों... ! द्रव्य का अवलम्बन करके ज्ञान की जिस पर्याय ने अनुभव किया, मुक्तस्वरूप के लक्ष्य से जो ज्ञान का अनुभव हुआ, वह ज्ञान वही आत्मा है और वह आत्मा, वही जैनशासन है, यह जैनशासन वह श्रुतज्ञान है – यहाँ ऐसा लेना है। भावश्रुतज्ञान, वह आत्मा है – ऐसा यहाँ लेना है। आहा...हा... ! है ?

परन्तु अब... थोड़ा ध्यान अधिक रखना भाई ! ऐसा होने पर भी, क्यों प्रगट होता नहीं ? और कैसे प्रगट होता है ? (वह कहते हैं)। **सामान्यज्ञान का आविर्भाव....** यह क्या कहते हैं ? त्रिकाली ज्ञायकभाव जो सामान्य है, त्रिकाली ज्ञायकभाव जो सामान्य है, उसका आविर्भाव अर्थात् प्रगट होना। वह त्रिकाली है, उसका प्रगट होना या नहीं प्रगट होना तो है नहीं, परन्तु यहाँ तो जो त्रिकाली वस्तु है, उसका अनुभव हुआ, उस कारण उसको ज्ञायक का अनुभव हुआ – ऐसा कहा जाता (है)।

वह, सामान्यज्ञान का आविर्भाव, अर्थात् ? जो ज्ञानसामान्य त्रिकाली ध्रुव है, जिसमें मति–श्रुत और अवधि आदि के भेद भी नहीं; अन्दर अकेला ज्ञानमूर्ति प्रभु, ध्रुव है, उस ज्ञान का जो अनुभव, वह सामान्यज्ञान का आविर्भाव ! वह ज्ञानसामान्य अर्थात् त्रिकाल (स्वरूप), उसकी दृष्टि होने पर, उस सामान्यज्ञान का पर्याय में अनुभव होना, वह सामान्यज्ञान का आविर्भाव। आहा...हा... ! सामान्य का आविर्भाव होता नहीं; सामान्य तो त्रिकाल ही रहता है। समझ में आया ? परन्तु सामान्य की तरफ लक्ष्य करके जो अनुभव हुआ, उसको सामान्यज्ञान कहा जाता है।

फिर से – सामान्यज्ञान का आविर्भाव–सामान्य अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकभाव, जो अबद्धस्पृष्ट आदि (पाँच भावस्वरूप) कहा, उस पर दृष्टि देने पर, वह है तो त्रिकाली प्रगटस्वरूप ही, परन्तु इसने अनुभव किया, तब इसे प्रगट देखने में आया; इस कारण इसे ज्ञायकभाव प्रगट हुआ, आविर्भाव हुआ, बाहर आया, ख्याल में आया – ऐसा कहा जाता है। है ? आहा...हा... !

फिर से – सामान्यज्ञान का आविर्भाव अर्थात् (क्या) ? त्रिकाली ज्ञायकभाव जो

अबद्धस्पृष्ट, मुक्त कहा, उसका अनुभव, वह सामान्यज्ञान का आविर्भाव (है)। जो सामान्यज्ञान प्रगट में – ख्याल में नहीं था, तब उसे तिरोभूत कहा जाता था। यह ज्ञायक है, वह आविर्भाव और तिरोभूत होता नहीं। ज्ञायक जो त्रिकाली है, उसका कुछ भी आविर्भाव और तिरोभूत होता (नहीं), वह तो है वही है, परन्तु ज्ञायकभाव का–सामान्य ज्ञान का (जो अनुभव किया) त्रिकाली ज्ञान पर दृष्टि देने पर जो अनुभव हुआ, उसे सामान्य का आविर्भाव कहा जाता है। समझ में आया?

फिर से – सामान्यज्ञान का आविर्भाव, अर्थात् कि पहले जो अबद्धस्पृष्ट सामान्य कहा, गुणभेद से रहित जो सामान्य कहा, वह वस्तु है त्रिकाली द्रव्य... त्रिकाली द्रव्य; उस द्रव्य का अनुभव, वह सामान्य का आविर्भाव अर्थात् सामान्य प्रगट हुआ कहने में (आता है)। सामान्य तो सामान्य ही है। सामान्य बाहर में आवे (तो) वह तो विशेष हो गया, किन्तु यहाँ सामान्य के ऊपर दृष्टि देने पर जो आविर्भाव हुआ, अनुभव हुआ, इसलिए सामान्य का आविर्भाव कहा गया।

मुमुक्षु : पर्याय में आविर्भाव हुआ?

समाधान : पर्याय में दृष्टि (में) आया, इसलिए सामान्य का आविर्भाव–सामान्य प्रगट हुआ – ऐसा कहा जाता है। आहा...हा...! है न सामने, लिखा हुआ है या नहीं? सामान्यज्ञान का प्रगट होना अर्थात् कि त्रिकाली ज्ञानस्वभाव, उसमें दृष्टि देने पर वह ज्ञायकभाव जानने में आया, इसलिए वह ज्ञायकभाव प्रगट हुआ – ऐसा कहा जाता है। आहा...हा...हा...! धन्नालालजी! है?

यह गाथा सूक्ष्म है, प्रभु! पन्द्रहवीं गाथा तुम सबने लिखी है! वहाँ सोनगढ़ एक पत्र आया था कि ये-ये वाँचना। पन्द्रहवीं में तो यह है। आहा...हा...! यहाँ पन्द्रहवान नहीं, हों! यहाँ सोलहवान है। पन्द्रहवीं गाथा में सोलहवान की बात है। सोलहवान अर्थात्? त्रिकाल नित्यानन्द प्रभु है... है.... है.... है...., है..., है.... है... जिसमें पर्याय का भी भेद नहीं – ऐसा जो भगवान ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, सच्चिदानन्द प्रभु, ध्रुवभाव, उसका लक्ष्य करने पर ज्ञान में अनुभव में जो आवे, उस कारण वह सामान्य प्रगट हुआ है, सामान्य का आविर्भाव हुआ है – ऐसा कहा जाता है। आ...हा...हा...! यह एक बोल ही कठिन है।

मुमुक्षु : बहुत सरस! अलौकिक सरस बात!

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा...हा...! बापू! यह बात कान में सुनने को मिले, वह भाग्यवान है! ऐसी यह तो त्रिलोकीनाथ की वाणी है। जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ भगवान के मुख से दिव्यध्वनि निकली। ये 'कुन्दकुन्दाचार्य' वहाँ गये थे, आठ दिवस रहे थे, सन्त थे, अनुभवी थे, चारित्रवन्त थे, फिर भी वहाँ आठ दिन रहकर ज्ञान की निर्मलता बहुत प्रगट हुई, (बाद में वहाँ से) आकर यह शास्त्र बनाया। आहा...हा...! मूल गाथा तो इनकी है न? और उन गाथाओं की यह टीका, उनके बाद – एक हजार वर्ष बाद 'अमृतचन्द्र आचार्य' हुए, उन्होंने यह टीका बनाई। जैसे, तीर्थंकर के भाव की गणधर रचना करते हैं, वैसे 'कुन्दकुन्दाचार्य' के भाव की 'अमृतचन्द्राचार्य' ने रचना की है।

मुमुक्षु : उसका रहस्य तो आप खोल रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग तो इसमें यह रहा है न, प्रभु! **यह तो अन्दर पूर्व का था, वही आया**!! आ...हा...हा...! यह तो किसी के पास से सुना नहीं था, किसी के पास था नहीं तो किसे सुनें? आ...हा...हा...! **परन्तु अन्दर से ही आया।** कल रात में कहा नहीं था? **शिवरमणी रमनार तु, तुं ही देवनो देव।** यह आवाज (संवत्) 64 वीं साल में आई। अठारह वर्ष की उम्र में! दुकान पर। पिताजी गुजर गये और दुकान चलानेवालों में मैं ही दुकान चलाता। उसमें एक बार रामलीला आई... रामलीला! यह रामलीला नहीं होती? 'राम' और 'लक्ष्मण' की बड़ी लीला करते, वह देखने गये थे। बाह्मण के लड़के.... ऐसे भजते...! 'राम', 'सीता' और 'लक्ष्मण', ओ...हो...हो...! गाँव के एक मन्दिर का बाबा था, उस बाबा ने भी उनकी आरती उतारी! दूसरे भेष की! ब्राह्मण के लड़के 'राम' और (लक्ष्मण), उनकी आरती उतारी, इतना रस था। उस रस में मुझे अन्दर से रस आ गया। मैं तो व्यापारी। यहाँ कवि (कविता) कौन जानते थे! परन्तु 6 पंक्ति कौन जाने कैसे बन गई। आधी पंक्ति याद रह गई, बाकी सब पुस्तक में रह गई। **अन्दर से ऐसा पहले से आया – हे आत्मा! शिवरमणी रमनार तुं....** तेरी परिणति तो शिवरमणी की है। यह स्त्री नहीं होती। **'तुम ही देवों के देव हो'** वह समझ में नहीं आया था, यह क्या कहते हैं? **अन्दर से आया... तुम देवों के देव हो। बाद में तो फिर बहिन की तरफ**

से (खुलासा मिल गया)।

यहाँ कहते हैं, आहा...हा...! **सामान्यज्ञान का आविर्भाव।** इस शब्द में बहुत गम्भीरता है। एक चैतन्यमूर्ति भगवान अन्दर विराजमान है। ध्रुवस्वरूप... ध्रुवस्वरूप... उसका अनुभव, (उसे) ध्रुव का आविर्भाव कहा जाता है। ध्रुव का आविर्भाव होता नहीं; ध्रुव तो ध्रुवरूप ही रहता है, फिर भी ध्रुव तरफ दृष्टि होने पर जो आनन्द का स्वाद आया, उसको सामान्य प्रगट हुआ – ऐसा कहा जाता है। सामान्य में जो अतीन्द्रिय आनन्द भरा है, त्रिकाली में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, (ज्ञान) उसके सन्मुख हुआ, वहाँ जो आनन्द प्रगट हुआ, उससे वह सामान्य का आविर्भाव (अर्थात् कि) द्रव्य मानो उसको प्रगट हुआ – ऐसा कहा जाता है। सामान्य अर्थात् द्रव्य (और) आविर्भाव अर्थात् प्रगट हुआ। आहा...हा...! समझ में आया? भाषा तो सरल है। रायचन्दभाई! बहुत गूढ़ नहीं है। यह संस्कृत नहीं, व्याकरण नहीं, यहाँ तो सादी भाषा (है) आ...हा...हा...!

सामान्य का तिरोभाव.... अन्दर एकरूप वस्तु है। बद्धस्पृष्ट रहित जो पाँच बोल कहे, उन पाँच बोलरूप एक स्वरूप, उसकी दृष्टि होने पर उस ज्ञायक का श्रुतज्ञान में भान हुआ तो वह ज्ञायकभाव प्रगट हुआ, वह सामान्यभाव आविर्भाव–प्रगट हुआ – ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

सामान्यज्ञान का... सामान्यज्ञान अर्थात् त्रिकाली। सामान्यज्ञान अर्थात् त्रिकाली (ज्ञायकभाव का) आविर्भाव अर्थात् प्रगटता (हुई) (अर्थात्) पर्याय में ख्याल आया। अन्तर्मुख देखने पर, पूर्णानन्द के नाथ को अन्दर में देखने पर... आ...हा...हा...! सबसे दृष्टि हटाकर – संयोग से दृष्टि हटाकर, निमित्त से हटाकर, राग से हटाकर, पर्यायबुद्धि में से भी दृष्टि हटाकर, सामान्य पर जहाँ दृष्टि गयी, तब वह सामान्य आविर्भाव हुआ, तब वह सामान्य है, यह पर्याय में ख्याल में आया। ख्याल में आया, यह आविर्भाव हुआ। जो ख्याल में नहीं था, वह सामान्य ख्याल में आया, यह 'सामान्य का आविर्भाव हुआ' – ऐसा कहने में आया। आहा...हा...!

मुमुक्षु : दृष्टि में सामान्य ख्याल में आया, उसका मतलब आविर्भाव हुआ?

समाधान : सामान्य (का) तो कुछ भी आविर्भाव होता नहीं; सामान्य तो त्रिकाल निरावरण ही है परन्तु सामान्य का जहाँ लक्ष्य हुआ और दृष्टि हुई, वहाँ आनन्द का स्वाद

आया और श्रुतज्ञान प्रगट हुआ, (उसको) सामान्य का आविर्भाव कहा जाता है। सामान्य प्रगट हुआ – ऐसा कहा जाता है। आविर्भाव अर्थात् प्रगट हुआ। आहा...हा...हा...!

ऐसी बात, 'आफ्रीका' में! सूक्ष्म बात है, भगवान! सूक्ष्म भी आने दो, कहते थे न रात में? यह आज सूक्ष्म आया।

मुमुक्षु : यह तो हथेली में आत्मा बताया?

पूज्य गुरुदेवश्री : हथेली में आत्मा है! बात सच्ची, बापा! आ...हा...हा...!

प्रभु! प्रभु की पुकार है कि प्रभु! तेरी प्रभुता से भरा हुआ पूर्ण तत्त्व है, उसकी तुझे दृष्टि हो और भावश्रुतज्ञान हो, तब वह सामान्य भाव है, वह प्रगट हुआ, ख्याल में आया, पर्याय अनुभव में आई अर्थात् यहाँ सामान्य (का) आविर्भाव हुआ – ऐसा कहा जाता है। धन्नालालजी!

आ...हा...हा...! अमृतवाणी है भगवान की! यह तो अमृत बहाया है। आहा...हा...! आ...हा...हा...! 'श्रीमद् एक (बार) कहते थे –

जे स्वरूप समज्या बिना, पाम्यो दुःख अनन्त;
समझाव्युं ते पद नमुं श्री सद्गुरु भगवन्त।
रे गुणवंता रे ज्ञानी, अमृत बरस्यां रे पंचमकालमां!
हे गुणवंता अे ज्ञानी, अे अमृत वरस्यां रे पंचमकालमां।।

आ...हा...हा...! ऐसी चीज है। लक्ष्मीचन्दभाई!

सामान्यज्ञान अर्थात् त्रिकाली; उसका आविर्भाव अर्थात् पर्याय में प्रगट हुआ। उसके सम्मुख देखने पर, ध्रुव की नजर करने पर, ध्रुव के निधान को नजर में लेने पर वह सामान्य प्रगट हुआ अर्थात् ख्याल में आया। ख्याल में आया, उसे सामान्य प्रगट हुआ – ऐसा कहा जाता है। भाषा थोड़ी सादी है परन्तु भाव बहुत गहरे हैं। आ...हा...हा...!

अरे...रे...! इसने आत्मा का कभी किया नहीं। बाहर की पंचायत के कारण निवृत्त नहीं होता। अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ विराजता है, उसको देखने के लिए, उसे अड़ने-स्पर्शन करने के लिए, उसके सन्मुख होने के लिए फुरसत नहीं निकालता और

भटकने के मार्ग में फुरसत लेकर पड़ा है। भाई ! आहा...हा... ! फिर भले अरबोंपति हो या करोड़पति धूल हो ! पति तो उसे कहते हैं – करोड़पति वह जड़ का पति, उसको पति कहते हैं? करोड़पति और अरबपति ! – भैंस का पति पाड़ा (कहा जाता है) ऐसे ही यह करोड़पति वह करोड़ का स्वामी – जड़ का पति कहलाये। आ...हा...हा... ! यहाँ तो अन्दर से आत्मा का स्वामी हुआ ! आहा...हा... !

भगवान सामान्यस्वरूप जो है, उसका आविर्भाव हुआ। आहा... ! **और विशेष (ज्ञेयाकार)ज्ञान का तिरोभाव...** अर्थात्? ज्ञान में जो अनेक ज्ञेयों से ज्ञान भंग पड़ता – ज्ञान की पर्याय में दूसरे ज्ञेयों को जानने से भंग पड़ता था, उसका ढँक (जाना, उसे तिरोभाव कहते हैं)। फिर से ! फिर से ! है? विशेष अर्थात् (ज्ञेयाकार) ज्ञान का तिरोभाव, अर्थात? ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयों (को) जानकर ज्ञान मानो ज्ञेयरूप है, ऐसा हो जाता है, वह ज्ञेयाकार मिटकर ज्ञानाकार ज्ञान हुआ। समझ में आया? अर्थात् सामान्य का आविर्भाव हुआ और ज्ञेयाकार जो ज्ञान होता था, वह पराधीन था, वह तिरोभूत हो गया। आ...हा...हा... !

फिर से लेते हैं। विशेषज्ञान का तिरोभाव – आच्छादन अर्थात्? कि ज्ञान की पर्याय में भेदरूप जो अनुभव था.... वह दूसरे ज्ञेय हैं, उन दूसरे ज्ञेयों के आकाररूप परिणमित हुआ ज्ञान, वह पराधीन था। दूसरे ज्ञेय को जाननेरूप परिणमित हुआ ज्ञान, वह पराधीन था। वह ज्ञेयाकार (ज्ञान) का तिरोभूत हो गया। सामान्यज्ञान (का) जहाँ आविर्भाव हुआ तो ज्ञान की पर्याय में पर के ज्ञेयाकाररूप होता था, वह ज्ञान ढँक गया, वह ज्ञान नष्ट हो गया। आ...हा...हा... !

फिर से – इसको तो फिर–फिर से ले तो कोई पुनरक्ति (दोष) लगता नहीं। आहा...हा... ! सामान्यज्ञान का आविर्भाव और विशेषज्ञान का तिरोभाव, अर्थात् कि ज्ञान की पर्याय स्वज्ञेय को नहीं जानने पर, जो ज्ञान की पर्याय पर के ज्ञेयाकार परिणमन में रुक गई थी, वह इस सामान्यज्ञान पर दृष्टि पड़ने पर (जो) ज्ञेयाकार ज्ञान होता (था), वह तिरोभाव–ढँक गया। समझ में आया? भाषा तो सरल (है) परन्तु भाव तो सूक्ष्म है न, बापा ! आहा...हा...हा... ! दो शब्द में तो इतना भरा है। सामान्य का आविर्भाव और विशेष का तिरोभाव। आहा...हा... !

भगवान आत्मा! सामान्य अर्थात् त्रिकाली स्वरूप जो है, उसकी दृष्टि होने पर, भावश्रुतज्ञान होने पर, वह भाव सामान्य का आविर्भाव कहा जाता है। आविर्भाव अर्थात् सामान्य प्रगट हुआ – ऐसा कहा गया। प्रगटी तो पर्याय, परन्तु सामान्य का लक्ष्य करने पर प्रगटी, इसलिए यह सामान्य प्रगट हुआ – ऐसा कहा जाता है। इस समय विशेष ज्ञान की पर्याय में अनन्त ज्ञेयाकाररूप होकर ज्ञान खण्ड–खण्ड होता था, ज्ञेयाकार होकर ज्ञान खण्ड–खण्ड होता था, वह तिरोभूत हो गया, वह ढँक गया। आ...हा...हा...! थोड़ा सूक्ष्म है। यह गाथा ही ऐसी है न, प्रभु! पन्द्रहवीं गाथा तुमने ही लिखी है कि यह वाँचना। आहा...हा...!

विशेष ज्ञेयाकार – अपने को भूलकर और अपनी ज्ञानपर्याय जो है, वह परज्ञेय के आकार परिणमन करती थी। अपने ज्ञान आकार (को) भूलकर परज्ञेय के आकार ज्ञान की परिणति होती थी। पर को जानने में (इसमें ज्ञान) रुक गया, वह कोई ज्ञान नहीं। पर को जानना, (इसमें) पर को जानने में जानता है तो अपनी पर्याय; पर को जानता नहीं, किन्तु पर की ओर के लक्ष्यवाला ज्ञान, परज्ञेय के आकार हुआ ज्ञान; वह सामान्यज्ञान प्रगट होने पर, वह ज्ञेयाकार ज्ञान की पर्याय ढँक गयी, आच्छादित हो गयी, रुक गयी। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

आ...हा...हा...! यह तो प्रभु! तेरे घर की बात है न! तेरे घर की बातें करते हैं, बापा! तुझे घर ले जाना चाहते हैं, परघर में फिरा करते हो। आहा...हा...! हिन्दी में क्या आता है न? 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया।' और (दूसरा) नहीं आता?

मुमुक्षु : हम तो कबहुँ न निज घर आये...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, 'हम तो कबहुँ न निज घर आये!' हिन्दी में आता है।

'हम तो कबहुँ न निज घर आये,
पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये...'

'पर घर भ्रमत' (अर्थात्) ज्ञानपर्याय इसकी होने पर भी, उस ज्ञानपर्याय में ज्ञेय के आकार को देखने रुक गया। 'पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये, हम तो कबहुँ न निजघर आये।' आहा...हा...! सामान्य के ऊपर दृष्टि पड़ने पर, निजघर में आया और ज्ञेयाकार जो

परघर था, उसको छोड़ दिया। आहा...हा...!

ऐसा मार्ग है, प्रभु! धीरे से विचारने जैसा है प्रभु! धीरे से यह करने जैसा है, बापू! बाकी तो देह चली जायेगी, देह तो नाश हो जायेगी। यह तो शमशान की राख है। शमशान की राख वह इतनी नहीं होगी, थोड़ी (होगी)। हवा आई उड़ और जायेगी। आ...हा...हा...! 'रजकण तारा रखडशे अने जेम रखड़ती रेती' यह रेत...रेत...! रेत रखड़ती है न? ऐसे ही यह रजकण (भटकेंगे)।

रजकण तारा रखड़शे अने जेम रखड़ती रेत,
पछी नरतन पामीश क्यां? चेत, चेत, नर चेत....

यह 'रजकण तारा रखड़शे जेम रखड़ती रेत।' धूल जैसे रखड़ती है, वैसे यह भटकेंगे और उड़ जायेंगे। 'पछी नरतन पामीश क्यां? चेत, चेत, नर चेत...' 'इसमें देखो, इसमें आओ, अब बाहर में सर्वत्र रुका पड़ा है...! मर गया है।' (ऐसा) कहते हैं। आहा...!

विशेष ज्ञेयाकार अर्थात् ज्ञान का तिरोभाव। वह ज्ञान का तिरोभाव अर्थात्? ज्ञान की पर्याय में जो पर ज्ञेयाकार होता था, वह ढँक गया, वह आच्छादन हो गया, (उसका) लक्ष्य छूट गया। ज्ञान की पर्याय में पर ज्ञेयाकार (जानने में आता था), उसका लक्ष्य छूट गया। ज्ञान की पर्याय में सामान्य लक्ष्य में आया अर्थात् सामान्य प्रगट हुआ और ज्ञेयाकार ढँक गया। आहा...हा...हा...! समझ में आया? भाषा तो सरल है। बहनों को, लड़कियों को भी समझ में आये ऐसा है। हमारे तो आत्मा हैं न! भगवान! हम तो आत्मा देखते हैं न, अन्दर सभी आत्मा है न! आहा...हा...! आ...हा...! सामान्य का आविर्भाव और विशेष का तिरोभाव में ऐसा अर्थ है।

त्रिकाली भगवान है – अबद्धस्पृष्ट जो पाँच भावस्वरूप कहा, उसका लक्ष्य होने पर वह सामान्य प्रगट हुआ – ऐसा कहा (जाता है)। अनुभव में आया अर्थात् प्रगट हुआ – ऐसा कहा जाता है और उसके अनुभव में आने पर, ज्ञान की पर्याय में पर ज्ञेयाकार होकर (ज्ञान) पराधीन होकर रुक जाता था, उस ज्ञेयाकार का वहाँ नाश हो गया। ज्ञानाकार ज्ञान होने पर, ज्ञेयाकार का नाश हो गया। धन्नालालजी! आहा...हा...! गाथा तो ऐसी ऊँची है,

बापू! कान में पड़ने के लिए भाग्य चाहिए। आहा...हा...! ...अभी तो इन दो पंक्तियों में यह सब...। आहा...हा...!

सामान्यज्ञान अर्थात् त्रिकाली वस्तु, उसका आविर्भाव अर्थात् कि उसका भान होना। वह तो है वही है। 320 गाथा में तो ऐसा कहा है – सकल निरावरण...। 320 गाथा! संस्कृत है। 'जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्धपारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ।' यह संस्कृत का है। इसमें यह लिखा हुआ है परन्तु वह पृष्ठ अलग है। आहा...हा...!...

यहाँ कहते हैं, वस्तु तो वस्तु है। वस्तु तो सकलनिरावरण है। वस्तु प्रगट होती है और वस्तु आच्छादित होती है – ऐसा नहीं। यह क्या कहा? जो द्रव्य है त्रिकाली भगवान; उस द्रव्य को आवरण है और द्रव्य को निरावरण है – ऐसा है ही नहीं। द्रव्य तो त्रिकाल निरावरण है। आया न? सकल निरावरण – त्रिकाल निरावरण। परन्तु पर्याय में राग का सम्बन्ध है, इस कारण आवरणवाला कहा जाता है। वह यहाँ कहते हैं, यह दृष्टि जिसने छोड़ दी है, पर में रुकते ज्ञेयाकार ज्ञान को छोड़ दिया है और ज्ञायक त्रिकाली है, वहाँ दृष्टि लगायी है, उसको भावश्रुतज्ञान हुआ है, वह भावश्रुतज्ञान (होने पर) वह आत्मा सामान्य प्रगट हुआ – ऐसा कहा जाता है। आहा...हा...!

ऐसा उपदेश अब...! साधारण को स्थूल बातें चाहिए हो, बापू! मार्ग तो यह है। बाल और गोपाल। 17-18 गाथा में आयेगा। 'आबाल गोपाल।' बालक से लेकर वृद्ध सभी के लिए यह पात्रता और लायकात है। वहाँ 17-18 गाथा में तो वहाँ तक आयेगा– आबाल-गोपाल-बालक से लेकर वृद्ध तक सभी को ज्ञान की पर्याय में आत्मा जानने में आता है। 17-18 गाथा में ऐसा आयेगा, इस (गाथा) के बाद।

इस ज्ञान की पर्याय में सभी को आत्मा जानने में आता है परन्तु यह नजर करता नहीं। नजर पर्याय और राग में रखता है, इस कारण अन्दर दिखायी देने पर भी, ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है, इस कारण ज्ञान की पर्याय स्व को जाने बिना रहती ही नहीं। वह ज्ञानपर्याय स्व को-आत्मा को जानने पर भी, पर्याय लक्ष्यवाला, राग के लक्ष्यवाला उसकी तरफ नजर (करता) नहीं। वह अन्तर की नजर करता नहीं। अन्तर में नजर करता

नहीं; इसीलिए ज्ञेयाकार ज्ञान (में) रहकर भटककर मरता है। आहा...हा...!

विशेष कहेंगे...! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)